IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Impact Factor: 5.731

Volume 7, Issue 2, July 2021

भारतीय सामाजिक इतिहास में समाज सुधारकों की भूमिका

Dr. Virendra Kumar Jhariya

Assistant Professor, Department of History

Mekalsuta College, Dindori, Madhya Pradesh, India

प्रस्तावना: सामाजिक आंदोलन एक प्रकार का सामूहिक क्रिया है सामाजिक आंदोलन व्यक्तियों और संगठनों के विशाल अनौपचारिक समूह होते हैं जिनका उद्देश्य किसी विशिष्ट सामाजिक मुद्दे पर केंद्रित होता है, जो सामाजिक परिवर्तन करना चाहते हैं या किसी सामाजिक परिवर्तन को समाप्त कर पूर्व स्थिति में लाना चाहते हैं। इस शोध पत्र में नीचे दिये गये समाजसुधारकों के समाज के प्रति महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1. झलकारी बाई –

झलकारी बाई का जन्म बुंदेलखंड के एक गांव में 22 नवंबर को एक निर्धन कोली परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सदोवा (उर्फ मूलचंद कोली) और माता जमुनाबाई (उर्फ धनिया) था। झलकारी बचपन से ही साहसी और दृढ़.प्रतिज्ञ बालिका थी। बचपन से ही झलकारी घर के काम के अलावा पशुओं की देखरेख और जंगल से लकड़ी इकट्ठा करने का काम भी करती थी। एक बार जंगल में झलकारी मुठभेड़ एक बाघ से हो गई थी और उन्होंने अपनी कुल्हाड़ी से उस जानवर को मार डाला था। वह एक वीर साहसी महिला थी।

झलकारी का विवाह झांसी की सेना में सिपाही रहे पूरन कोली नामक युवक के साथ हुआ। पूरे गांव वालों ने झलकारी बाई के विवाह में भरपूर सहयोग दिया। विवाह पश्चात वह पूरन के साथ झांसी आ गई। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की नियमित सेना में, वह महिला शाखा दुर्गा दल की सेनापति थीं। वह लक्ष्मीबाई की हमशक्ल भी थीं, इस कारण शत्रु को धोखा देने के लिए वे रानी के वेश में भी युद्ध करती थीं।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अग्रेंजी सेना से रानी लक्ष्मीबाई के घिर जाने पर झलकारी बाई ने बड़ी सूझबूझ, स्वामीभक्ति और राष्ट्रीयता का परिचय दिया था। रानी के वेश में युद्ध करते हुए वे अपने अंतिम समय अंग्रेजों के हाथों पकड़ी गईं और रानी को किले से भाग निकलने का अवसर मिल गया।

विवाह के बाद शामिल हुईं लक्ष्मीबाई की सेना में

उसका विवाह रानी लक्ष्मीबाई की सेना के एक सैनिक पूरन कोरी से हुआ। पूरन भी बहुत बहादुर था और पूरी सेना उसकी बहादुरी का लोहा मानती थी। एक बार गौरी पूजा के अवसर पर झलकारी गाँव की अन्य महिलाओं के साथ महारानी को सम्मान देने झाँसी के किले में गयीं, वहाँ रानी लक्ष्मीबाई उन्हें देख कर अवाक रह गईं, क्योंकि झलकारी बिल्कुल रानी लक्ष्मीबाई की तरह दिखतीं थीं। रानी लक्ष्मीबाई झलकारी की बहादुरी के बारे में जानकर प्रभावित हुईं और दुर्गा सेना में शामिल कर लिया। झलकारी ने यहाँ अन्य महिलाओं के साथ बंदूक चलाना, तोप चलाना और अन्य हथियारों का प्रशिक्षण लिया। और आगे चलकर झलकारी दुर्गा सेना की सेनापति बनीं।

जंगल में तेंदुए से लड़ी थीं

जंगल में तेंदुए से लड़ी थीं झलकारी घर के काम के अलावा पशुओं के रखरखाव और जंगल से लकड़ी इकट्ठा करने का काम भी करती थीं। एक बार जंगल में उसकी मुठभेड़ एक तेंदुए से हो गई। झलकारी के पास उस वक्त हथियार के नाम पर सिर्फ एक कुल्हाड़ी थी। झलकारी ने उसी कुल्हाड़ी से तेंदुए को मार गिराया।

झलकारीबाई की प्रसिद्धि

1951 में बी.एल. वर्मा द्वारा रचित उपन्यास झाँसी की रानी में उनका उल्लेख किया गया है, वर्मा ने अपने उपन्यास में झलकारीबाई को विशेष स्थान दिया है. उन्होंने अपने उपन्यास में झलकारीबाई को कोरियन और रानी लक्ष्मीबाई के सैन्य दल की साधारण महिला सैनिक बताया है. एक और उपन्यास में हमें झलकारीबाई का उल्लेख दिखाई देता है, जो इसी वर्ष राम चन्द्र हेरन द्वारा लिखा गया था, उस उपन्यास का नाम माटी था. हेरन ने झलकारीबाई को "उदात्त और वीर शहीद" कहा है.

झलकारीबाई का पहला आत्मचरित्र 1964 में भवानी शंकर विशारद द्वारा लिखा गया था, भवानी शंकर ने उनका आत्मचरित्र का लेखन वर्मा के उपन्यास और झलकारी बाई के जीवन पर आधारित शोध को देखते हुए किया था. बाद में कुछ समय बाद महान जानकारो ने झलकारीबाई की तुलना रानी लक्ष्मीबाई के जीवन चरित्र से भी की.

झलकारीबाई की महानता

कुछ ही वर्षो में भारत में झलकारीबाई की छवि में काफी प्रख्याति आई है. झलकारीबाई की कहानी को सामाजिक और राजनैतिक महत्ता दी गयी. और लोगो में भी उनकी कहानी सुनाई गयी. बहोत से संस्थाओ द्वारा झलकारीबाई के मृत्यु दिन को शहीद दिवस के रूप में भी मनाया जाता है. झलकारीबाई की महानता को देखते हुए ही उन्हें सम्मानित करने के उद्देश से पृथक बुन्देलखण्ड राज्य बनाने की मांग की गयी थी. भारत सरकार ने झलकारीबाई के नाम का पोस्ट और टेलीग्राम स्टेम्प भी जारी किया है. भारतीय पुरातात्विक सर्वे ने अपने पंच महल के म्यूजियम में, झाँसी के किले में झलकारीबाई का भी उल्लेख किया है।

स्वाधीनता संग्राम में भूमिका

लार्ड डलहौजी की राज्य हड़पने की नीति के चलते, ब्रिटिशों ने निःसंतान लक्ष्मीबाई को उनका उत्तराधिकारी गोद लेने की अनुमति नहीं दी, क्योंकि वे ऐसा करके राज्य को अपने नियंत्रण में लाना चाहते थे। हालांकि, ब्रिटिश की इस कार्रवाई के विरोध में रानी के सारी सेना, उसके सेनानायक और झांसी के लोग रानी के साथ लामबंद हो गये और उन्होने आत्मसमर्पण करने के बजाय ब्रिटिशों के खिलाफ हथियार उठाने का संकल्प लिया।

अप्रैल १८५८ के दौरान, लक्ष्मीबाई ने झांसी के किले के भीतर से, अपनी सेना का नेतृत्व किया और ब्रिटिश और उनके स्थानीय सहयोगियों द्वारा किये कई हमलों को नाकाम कर दिया। रानी के सेनानायकों में से एक दूल्हेराव ने उसे धोखा दिया और किले का एक संरक्षित द्वार ब्रिटिश सेना के लिए खोल दिया। जब किले का पतन निश्चित हो गया तो रानी के सेनापतियों और झलकारी बाई ने उन्हें कुछ सैनिकों के साथ किला छोड़कर भागने की सलाह दी। रानी अपने घोड़े पर बैठ अपने कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ झांसी से दूर निकल गईं।

झलकारी बाई का पति पूरन किले की रक्षा करते हुए शहीद हो गया लेकिन झलकारी ने बजाय अपने पति की मृत्यु का शोक मनाने के, ब्रिटिशों को धोखा देने की एक योजना बनाई। झलकारी ने लक्ष्मीबाई की तरह कपड़े पहने और झांसी की सेना

की कमान अपने हाथ में ले ली। जिसके बाद वह किले के बाहर निकल ब्रिटिश जनरल ह्यूग रोज़ के शिविर मे उससे मिलने पहँची।

इतिहास के पृष्ठों में खोयी झलकारी बाई नामक एक अविश्वसनीय योद्धा और महिला सैनिक थी. झलकारी बाई ने झाँसी के युद्ध में भारतीय बगावत के समय महत्वपूर्ण योगदान दिया था. अपनी विनम्र पृष्ठभूमि का पालन करते हुए वह की सलाहकार बनी और रानी लक्ष्मी बाई की सेना के कई महत्वपूर्ण निर्णय भी लिए. वास्तव में, वह इतनी साहसी थी कि झांसी के किले की लड़ाई के दौरान, उसने खुद को रानी लक्ष्मीबाई के रूप में छिपा लिया और सेना को आदेश लिया. इस प्रकार असली रानी को इस दौरान भागने का मौका प्रदान किया था. 1857 के विद्रोह के दौरान झलकारी बाई ने अपने बहादुरी और साहस से ब्रिटिश सेना के दिल में भय उत्पन्न कर दिया था।

"जा कर रण में ललकारी थी,
वह तो झाँसी की झलकारी थी,
गोरो से लड़ना सिखा गयी,
है इतिहास में झलक रही,
वह भारत की ही नारी थी!!"

2. सम्राट अशोक –

अशोक बिंदुसार का पुत्र था, बौद्ध ग्रन्थ दीपवंश में बिन्दुसार की 16 पत्नियों एवं 101 पुत्रों का जिक्र है। अशोक की माता का नाम शुभदाग्री था। बिंदुसार ने अपने सभी पुत्रों को बेहतरीन शिक्षा देने की व्यवस्था की थी। लेकिन उन सबमें अशोक सबसे श्रेष्ठ और बुद्धिमान था। प्रशासनिक शिक्षा के लिये बिंदुसार ने अशोक को उज्जैन का सुबेदार नियुक्त किया था। अशोक बचपन से अत्यन्त मेघावी था। अशोक की गणना विश्व के महानतम् शासकों में की जाती है।

आरंभिक जीवन

बिंदुसार ने अशोक को तक्षशीला भेजा। अशोक वहाँ शांति स्थापित करने में सफल रहा। अशोक अपने पिता के शासनकाल में ही प्रशासनिक कार्यों में सफल हो गया था। जब 273 ई.पू. में बिंदुसार बीमार हुआ तब अशोक उज्जैन का सुबेदार था। पिता की बिमारी की खब़र सुनते ही वह पाटलीपुत्र के लिये रवाना हुआ लेकिन रास्ते में ही अशोक को पिता बिंदुसार के मृत्यु की ख़बर मिली। पाटलीपुत्र पहुँचकर उसे उन लोगों का सामना करना पड़ा जो उसे पसंद नही करते थे।

युवराज न होने के कारण अशोक उत्तराधिकार से भी बहुत दूर था। लेकिन अशोक की योग्यता इस बात का संकेत करती थी कि अशोक ही बेहतर उत्तराधिकारी था। बहुत से लोग अशोक के पक्ष में भी थे। अतः उनकी मदद से एंव चार साल के कड़े संघर्ष के बाद 269 ई.पू. में अशोक का औपचारिक रूप से राज्यभिषेक हुआ।

सम्राट अशोक बचपन से ही शिकार के शौकीन थे तथा खेलते खेलते वे इसमे निपूर्ण भी हो गए थे। कुछ बड़े होने पर वे अपने पिता के साथ साम्राज्य के कार्यो मे हाथ बटाने लगे थे तथा वे जब भी कोई कार्य करते अपनी प्रजा का पूरा ध्यान रखते थे, इसी कारण उनकी प्रजा उन्हे पसंद करने लगी थी। उनके इन्ही सब गुणो को देखते हुये, उनके पिता बिन्दुसार ने उन्हे कम उम्र मे ही सम्राट घोषित कर दिया था। उन्होने सर्व प्रथम उज्जैन का शासन संभाला, उज्जैन ज्ञान और कला का केंद्र था तथा अवन्ती की राजधानी।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
Impact Factor: 5.731
Volume 7, Issue 2, July 2021

जब उन्होने अवन्ती का शासन संभाला तो वे एक कुशल रजनीतिज्ञ के रूप मे उभरे। उन्होने उसी समय विदिशा की राजकुमारी शाक्य कुमारी से विवाह किया । शाक्य कुमारी देखने मे अत्यंत ही सुंदर थी। शाक्य कुमारी से विवाह के पश्चात उनके पुत्र महेंद्र तथा पुत्री संघमित्रा का जन्म हुआ । अशोक घोर मानवतावादी थे। वह रात द् दिन जनता की भलाई के काम ही किया करते थे। उन्हें विशाल साम्राज्य के किसी भी हिस्से में होने वाली घटना की जानकारी रहती थी। धर्म के प्रति कितनी आस्था थी, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वह बिना एक हजार ब्राम्हणों को भोजन कराए स्वयं कुछ नहीं खाते थे, कलिंग युध्द अशोका के जीवन का आखरी युध्द था, जिससे उनका जीवन को ही बदल गया।

अशोक ने मगध का शासन तो हथिया लिया, किंतु उसके राज्याभिषेक में अनेक बाधाएं उपस्थित होती रहीं, जिनका अशोक ने डटकर मुकाबला किया। महाराज बिंदुसार की मृत्यु के चार वर्ष बाद अशोक का बड़ा धूमधाम से राजतिलक हुआ। राजा बनते ही वे अपने पिता के समान नित्य हजारों ब्राह्मणों को दान देते, पुध्यकार्य और धर्मपूर्वक आचरण करते रहे। इस राज्य की सुव्यवस्था में चंद्रगुप्त मौर्य की योग्यता, चाणक्य की नीति और बिंदुसार के सुप्रबंध के सारे गुण थे।

राज्याभिषेक के आठवें वर्ष एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना घटी, जिसने अशोक के जीवन को ही नहीं, अपितु भारत के इतिहास को भी बदल दिया। अशोक अब अपनी निपुणता से एक बड़े राज्य का अधिकारी था। उसे शत्रुओं का भय नहीं था। राज्य में सर्वत्र शांति का साम्राज्य था, परंतु अशोक को अपनी राजधानी से दूर एक शक्तिशाली छोटा–राज्य स्वतंत्र राज्य खटकता रहता था। इस राज्य का नाम था कलिंग। वह पहले कभी नंद साम्राज्य के अधीन था, किंतु उसने अपनी शक्ति द्वारा उस पराधीनता से मुक्ति पा ली थी।

अशोक के पराक्रम, सैन्य–बल तथा नीति–निपुणता से कई राज्यों ने मगध की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किंतु कलिंग ने मगध की अधीनता स्वीकार नहीं की। यहां तक कि बिंदुसार ने भी अपने दक्षिण के आक्रमण काल में कलिंग को छेड़ना उचित न समझा था। उसने कलिंग के तीन ओर के प्रदेशों को जीतकर उसे घेर अवश्य रखा था। अशोक ने प्रतिदिन बढ़ते हुए इस शक्तिशाली कलिंग को जीतने का निश्चय किया।

अशोका और कलिंगा घमासान युध्द शुरु हुआ। जिसमे कलिंगा को परास्त किया जो इस से पहले किसी सम्राट ने नहीं किया था और ना ही कर पाया था। उस समय मौर्य साम्राज्य तब तक का सबसे बड़ा भारतीय साम्राज्य माना जाता था। सम्राट अशोक को अपने विस्तृत साम्राज्य से कुशल और बेहतर प्रशासक तथा बौद्व धर्म के प्रचार के लिए जाना जाता था। कलिंगा–अशोका युद्ध में 100000 से भी ज्यादा मृत्यु हुई और 150000 से भी ज्यादा घायल हुए।

इस युध्द में हुए भारी रक्तपात ने उन्हें हिलाकर रख दिया। उन्होंने सोचा कि यह सब लालच का दुष्परिणाम है और जीवन में फिर कभी युध्द न करने का प्रण लिया। उन्होंने बौध्द धर्म अपना लिया और अहिंसा के पुजारी हो गये। उन्होंने देशभर में बौध्द धर्म के प्रचार के लिए स्तंभों और स्तूपों का निर्माण कराया। विदेशों में बौध्द धर्म के विस्तार के लिए भिक्षुओं की तोलियां भेजीं। बुद्ध का प्रचार करने हेतु उन्होंने अपने रज्य में जगह–जगह पर भगवान गौतम बुद्ध की प्रतिमाये स्थापित की। और बुद्ध धर्म का विकास करते चले गये।

शासनकाल –

अशोका को एक निडर, परन्तु बहुत ही बेरहम राजा माना जाता है। उन्हें अवन्ती प्रान्त में हुए दंगों को रोकने के लिए प्रतिनियुक्त किया गया था। उज्जैन में विद्रोह को दबाने के बाद 286 ईसा पूर्व में उनको अवंती प्रांत के वायसराय नियुक्त किया गया। पिता बिन्दुसार नें अशोक को उनके उत्तराधिकारी बेटे सुसीम को एक विद्रोह दमन में मदद मिल सके। इसमें अशोक

सफल भी हुआ और उसे इसी कारण वह तक्सिला का वाइसराय भी बना। 272 इसा पूर्व में अशोक के पिता बिन्दुसार की मृत्यु हुई, उसके पश्चात दो वर्ष तक अशोक और उसके सौतेले भाइयों के बिच घमासान युद्ध चला।

दो बौद्ध ग्रन्थ; दिपवासना और महावासना के अनुसार, अशोक नें सिंहासन पर कब्ज़ा करने के लिए अपने 99 भाइयों को मार गिराया और मात्र विटअशोक को बक्श दिया। उसी समय 272 इसा पूर्व में अशोक सिंहासन तो चढ़ा, परन्तु उसका राजभिषेक 269 इसा पूर्व में हुआ और वह मौर्य साम्राज्य का तीसरा सम्राट बना। अपने शाशन काल के दौरान वह अपने साम्राज्य को भारत के सभी उपमहाद्वीपों तक बढ़ने के लिए लगातार 8 वर्षों तक युद्ध करते रहे।

कहा जाता है दक्षिण एशिया और मध्य एशिया में अशोका नें भगवान बुद्ध के अवशेषों को संग्रह करके रखने के लिए कुल 84000 स्तूप बनवाएं। उसके "अशोक चक्र" जिसको धर्म का चक्र भी कहा जाता था, आज के भारत के तिरंगा के मध्य में मौजूद है। मौर्य साम्राज्य के सभी बॉर्डर में 40–50 फीट ऊँचा. अशोक स्तम्भ अशोक द्वारा स्थापित किया गया है। अशोक नें चार आगे पीछे एक साथ खड़े सिंह का मूर्ति भी बनवाया था जो की आज के दिन भारत का राजकीय प्रतिक हैं। आप इस मूर्ति को भारत के सारनाथ मुसियम में देख सकते हैं।

बौध्द धर्म

कलिंग युद्ध में हुई क्षति तथा नरसंहार से उसका मन युद्ध से ऊब गया और वह अपने कृत्य को लेकर व्यथित हो उठा। इसी शोक से उबरने के लिए वह बुद्ध के उपदेशों के करीब आता गया और अंत में उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। बौद्ध धर्म स्वीकारने के बाद उसने उसे अपने जीवन मे उतारने का प्रयास भी किया। उसने शिकार तथा पशु–हत्या करना छोड़ दिया। उसने ब्राह्मणों एवं अन्य सम्प्रदायों के सन्यासियों को खुलकर दान देना भी आरंभ किया। और जनकल्याण के लिए उसने चिकित्यालय, पाठशाला तथा सड़कों आदि का निर्माण करवाया। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए धर्म प्रचारकों को नेपाल, श्रीलंका, अफ़ग़ानिस्तान, सीरिया, मिस्र तथा यूनान भी भेजा।

इसी कार्य के लिए उसने अपने पुत्र एवं पुत्री को भी यात्राओं पर भेजा था। अशोक के धर्म प्रचारकों में सबसे अधिक सफलता उसके पुत्र महेन्द्र को मिली। महेन्द्र ने श्रीलंका के राजा तिस्स को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया, और तिस्स ने बौद्ध धर्म को अपना राजधर्म बना लिया और अशोक से प्रेरित होकर उसने स्वयं को 'देवनामप्रिय' की उपाधि दी। अशोक के शासनकाल में ही पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता मोगाली पुत्र तिष्या ने की। यहीं अभिधम्मपिटक की रचना भी हुई और बौद्ध भिक्षु विभिन्न देशों में भेजे गये जिनमें अशोक के पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा भी सम्मिलित थे, जिन्हें श्रीलंका भेजा गया।

बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद अशोक ने उसके प्रचार करने का बीड़ा उठाया । उसने अपने धर्म के अनुशासन के प्रचार के लिए अपने प्रमुख अधिकारीयों युक्त ,राजूक और प्रादेशिक को आज्ञा दी। धर्म की स्थापना , धर्म की देखरेख धर्म की वृद्धि तथा धर्म पर आचरण करने वालो के सुख एवं हितों के लिए धर्म दृ महामात्र को नियुक्त किया । बौद्ध धर्म का प्रचार करने हेतु अशोक ने अपने राज्य में बहत से स्थान पर भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ स्थापित की । विदेश में बौद्ध धर्म के प्रचा हेतु उसने भिक्षुओं को भेजा । विदेश में बौद्ध धर्म के लिए अशोक ने अपने पुत्र और पुत्री तक को भिक्षु–भिक्षुणी के वेष में भारत से बाहर भेज दिया । इस तरह से वें बुद्ध धर्म का विकास करते चले गये। धर्म के प्रति अशोक की आस्था का पता इसी से चलता है की वे बिना 1000 ब्राम्हणों को भोजन कराए स्वयं कुछ नहीं खाते थे ।

मृत्यु

अशोक ने करीब 40 वर्ष तक शासन किया जिसके बाद लगभग 234 ईसापूर्व में उनकी मृत्यु हुई। उसके कई संतान तथा पत्नियां थीं। उनके बारे में अधिक पता नहीं है। अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य राजवंश करीब 50 वर्ष तक चला। लुम्बिनी में भी अशोक स्तंभ देखा जा सकता है। कर्नाटक के कई स्थानों पर उसके धर्मोपदेश के शिलोत्कीर्ण अभिलेख मिले हैं।

3. बिरसा मुंडा –

बिरसा मुंडा भारत के एक आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी और लोक नायक थे। अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम में उनकी ख्याति जग जाहिर थी। सिर्फ 25 साल के जीवन में उन्होंने इतने मुकाम हासिल किये कि हमारा इतिहास सदैव उनका ऋणी रहेगा।

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर 1875 को वर्तमान झारखंड राज्य के रांची जिले में उलिहातु गाँव में हुआ था।उनकी माता का नाम करमी हातू और पिता का नाम सुगना मुंडा था। उस समय भारत में अंग्रेजी शासन था। आदिवासियों को अपने इलाकों में किसी भी प्रकार का दखल मंजूर नहीं था। यही कारण रहा है कि आदिवासी इलाके हमेशा स्वतंत्र रहे हैं। अंग्रेज़ भी शुरू में वहां जा नहीं पाए थे, लेकिन तमाम षड्यंत्रों के बाद वे आख़िर घुसपैठ करने में कामयाब हो गये।

ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ़ पहली जंग!

बिरसा (ठपतें डनदक) पढ़ाई में बहुत होशियार थे इसलिए लोगों ने उनके पिता से उनका दाखिला जर्मन स्कूल में कराने को कहा। पर इसाई स्कूल में प्रवेश लेने के लिए इसाई धर्म अपनाना जरुरी हुआ करता था तो बिरसा का नाम परिवर्तन कर बिरसा डेविड रख दिया गया।कुछ समय तक पढ़ाई करने के बाद उन्होंने जर्मन मिशन स्कूल छोड़ दिया द्य क्योंकि बिरसा के मन में बचपन से ही साहूकारों के साथ–साथ ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के खिलाफ विद्रोह की भावना पनप रही थी।इसके बाद बिरसा ने जबरन धर्म परिवर्तन के खिलाफ़ लोगों को जागृत किया तथा आदिवासियों की परम्पराओं को जीवित रखने के कई प्रयास किया।

आदिवासियों के 'धरती पिता'

1894 में बारिश न होने से छोटा नागपुर में भयंकर अकाल और महामारी फैली हुई थी। बिरसा ने पूरे समर्पण से अपने लोगों की सेवा की। उन्होंने लोगों को अन्धविश्वास से बाहर निकल बिमारियों का इलाज करने के प्रति जागरूक किया। सभी आदिवासियों के लिए वे 'धरती आबा' यानि 'धरती पिता' हो गये। अंग्रेजों ने 'इंडियन फारेस्ट एक्ट 1882' पारित कर आदिवासियों को जंगल के अधिकार से वंचित कर दिया। अंग्रेजों ने ज़मींदारी व्यवस्था लागू कर आदिवासियों के वो गाँव, जहां वे सामूहिक खेती करते थे, ज़मींदारों और दलालों में बांटकर राजस्व की नयी व्यवस्था लागू कर दी। और फिर शुरू हुआ अंग्रेजों, जमींदार व महाजनों द्वारा भोले–भाले आदिवासियों का शोषण। इस शोषण के खिलाफ विद्रोह की चिंगारी फूंकी बिरसा ने। अपने लोगों को गुलामी से आजादी दिलाने के लिए बिरसा ने 'उलगुलान' (जल–जंगल–जमीन पर दावेदारी) की अलख जगाई।

IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Impact Factor: 5.731

Volume 7, Issue 2, July 2021

'हमारा देश, हमारा राज'

1895 में बिरसा (ठपतें डनदकं) ने अंग्रेजों की लागू की गयी ज़मींदारी प्रथा और राजस्व व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई के साथ–साथ जंगल–ज़मीन की लड़ाई छेड़ी। यह सिर्फ कोई बग़ावत नहीं थी। बल्कि यह तो आदिवासी स्वाभिमान, स्वतन्त्रता और संस्कृति को बचाने का संग्राम था।बिरसा ने 'अबुआ दिशुम अबुआ राज' यानि 'हमारा देश, हमारा राज' का नारा दिया। देखते–ही–देखते सभी आदिवासी, जंगल पर दावेदारी के लिए इकट्ठे हो गये। अंग्रेजी सरकार के पांव उखड़ने लगे। और भ्रष्ट जमींदार व पूंजीवादी बिरसा के नाम से भी कांपते थे। अंग्रेजी सरकार ने बिरसा के उलगुलान को दबाने की हर संभव कोशिश की, लेकिन आदिवासियों के गुरिल्ला युद्ध के आगे उन्हें असफलता ही मिली। 1897 से 1900 के बीच आदिवासियों और अंग्रेजों के बीच कई लड़ाईयां हुईं। पर हर बार अंग्रेजी सरकार ने मुंह की खाई।

अंतिम यात्रा

जिस बिरसा (ठपतें डनदकं) को अंग्रेजों की तोप और बंदूकों की ताकत नहीं पकड़ पायी, उसके बंदी बनने का कारण अपने ही लोगों का धोखा बनी। जब अंग्रेजी सरकार ने बिरसा को पकड़वाने के लिए 500 रूपये की धनराशी के इनाम की घोषणा की तो किसी अपने ही व्यक्ति ने बिरसा के ठिकाने का पता अंग्रेजों तक पहुंचाया। जनवरी 1900 में उलिहातू के नजदीक डोमबाड़ी पहाड़ी पर बिरसा अपनी जनसभा को सम्बोधित कर रहे थे, तभी अंग्रेज सिपाहियों ने चारो तरफ से घेर लिया। अंग्रेजों और आदिवासियों के बीच लड़ाई हुई। औरतें और बच्चों समेत बहुत से लोग मारे गये। अन्त में बिरसा भी 3 फरवरी 1900 को चक्रधरपुर में गिरफ़्तार कर लिये गये। 9 जून 1900 को बिरसा ने रांची के कारागार में आखिरी सांस ली।

संदर्भ सूची –

[1]. बिरसामुडा और उनका आंदोलन (लेखक कुमार सुरेश सिंह)

[2]. मौर्य साम्राज्य का इतिहास (लेखक सत्यकेतु विद्यालंकार)

[3]. महान सम्राट अशोक (लेखक बृजेश चक्रधर)

[4]. वीरांगना झलकारी बाई (लेखक मोहनदास नेमी सराय)